Diamond Jublee Issue

भगवत् कृपा

स्वामी नारायण

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-2, अंक-4-5	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-15.00
शुक्रवार, 12 मई' 78	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.25

काका हे अमर रहो.....

:श्रीजी स्वामी सत्य है:

लंदन 6-4-51

आदरणीय बड़े भैया और अ. सौ. कमला, रमेश, चंदुभाई, बाबा, परिवार मंडली,

.....चिट्ठी बहुत लम्बी हो गई है। बहुत कुछ तो आप भूल जायेंगे। किन्तु अत्यन्त महत्व पूर्ण है। मेरी यात्रा के अनुभवों का नवनीत है। मुझे यूरोपियन सभ्यता के आभास-स्थान-वृत्तियां एवम् बुदबुदा समान उपरि जीवन की अल्पायु क्षण-सुख शान्ति आदि मृगमरिचिका के समान प्रभावित नहीं करते हैं। मुझे तो शाश्वत सुख, आनन्द एवम् शान्ति चाहिए।

मेरा एक ही मालिक है और वह है पू.यज्ञपुरुषदासजी। उनके आश्रय में मैं सारे संसार के-इह लोक और परलोक के समस्त परिबलों के साथ लड़ने वाला हूँ और और एक दिन सबको आश्चर्य चकित कर दूंगा। किन्तु आप में से किसी को हानि नहीं होगी। अब मैं अपने आपको पहचानता हूँ। मेरी जितनी कसौटी होगी इतना मैं परिपक्व बनूंगा। अतः भैया मेरे दोष और मेरी त्रुटिया निरंतर दिखाते रहना। मुझे जो भी श्रद्धा-अंधश्रद्धा है वह जीवंत है और मेरे अनुभव से आई हुई है। शायद इसलिये मेरे मार्ग में सिद्धियाँ आयेगी यदि यह सच होगा तो; और वह प्रयोग मैं अपनी दृष्टि से प्रत्यक्ष देख लेना चाहता हूँ। इसके साथ संलग्न कागज से आप समझ जायेंगे कि सरकार सल्फेट खरीदने वाली नहीं है। हमें आर्डर नहीं

मिला है। किन्तु मेरी श्रद्धा निश्चल है। गुणातीतानंदस्वामी का नाम लेकर किया गया संकल्प कभी विफल नहीं हुआ है। मैं मानता हूँ कि इसमें हमारी भलाई ही होगी और जब आर्डर मिलेगा तब मैं तार द्वारा आपको सूचित करूंगा कि मेरा स्वप्न सिद्ध हो गया है। यह मेरी श्रद्धा की कसौटी होगी, किन्तु मैं उस पर निर्भर नहीं हूँ। मैं तो मजदूर हूँ, अहोरात्र पुरुषार्थ करने वाला हूँ। अपने पिताजी से जो सात्त्विक बल की शिक्षा पाई है उसी आधार पर कार्य करना मुझे तो अच्छा लगता है। किसी का डर नहीं है। देखो, जब हमारा जन्म हुआ तब 24 genes में कुछ वंशपरंपरागत Characteristics आ गई होगी, अतः संयोग विपरीत होते हुए भी राम और लक्ष्मण के समान बाबुदादु की एकता है। पांच हजार साल पूर्व हमारे आर्षदृष्टाओं ने ऋषियों ने जो भविष्यवाणी की थी और जीवन का पथ प्रदर्शित किया था उसका अर्क अभी कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। हमारी माँ-बहन दैवीय है। आप और बसंत दैवीय है। यह है हमारी सभ्यता के सु-फल और यह ही मुझे अच्छे लगते है। इसके अनुसार मेरी आवश्यकता होगी, मैं किसी के भय बिना वह ग्रहण करूंगा। मुझे लगता ही नहीं की मेरी शादी हुई है। सच्ची समझ प्राप्त होने के बाद मैं कोई दूसरी व्यक्ति ही बन गया हूँ और अब तो मुझे हमारे संस्कारबीज ही स्मरण में है। उसकी रक्षा करना यही है मेरा कर्तव्य! भैया, कुछ गलतफलत लिख दिया हो तो क्षमा कर देना और **यह चिट्ठी अवश्य संभाल कर रखना। मैं बहुत बड़ा जंग खेल रहा हूँ।** भविष्य क्या होगा वह तो गढडा वाले गुरु जाने, किन्तु होगा तब मेरी श्रद्धा की कसौटी समझ में आयेगी और इन शब्दों का मूल्य स्पष्ट होगा। इनमें कितना सच है और कितना झूठ है इसका परीक्षण आप कर पायेंगे। मेरे साहस में गुरु बिना किसी की सहाय नहीं है। मेरे व्यापारिक सौदे के बारे में मैंने रावजी पटेल को कुछ लिखा था। इन्होंने भी आपके ही समान भयप्रद चिट्ठी लिखी थी। मुझे तो मेरे साहसकार्य में किसी की सहायता और सहकार की आवश्यकता नहीं है। जब मैं निरुपाय बन जाऊं तब मुझे सहायभूत होना। इतना ही चाहता हूँ। यह ही मेरा भाग्य है। क्योंकि मुझे गुरु के अलावा जगत की किसी भी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो शुक्राचार्य के संजीवनमंत्र को मूर्तिमंत करना है, इस लोक में और परलोक में देवों से भी डरे बिना! फिर इस लोक की तो बात ही क्या? अतः धैर्य रखना और मेरी किसी भी प्रकार से चिन्ता मत करना। संसार का यह तंत्र झूठी नींव पर है और विश्व की गतिविधियां-नई दुनिया के मंडल हमारी senses देख नहीं सकते। इसके कारण हमारा आभासज्ञान स्वाभिविकतया अपूर्ण ही होगा। देखिए-Universe and God में केम्ब्रिज के प्रोफेसर ने न्यूटन का सिद्धांत (theory) असिद्ध कर दिया है। थोड़े समय के बाद आज के जो सिद्धांत (thories) है वे भी गलत माने जायेंगे। तब सत्य क्या है? इस सत्य के आधार पर जीवन की रचना कैसे करें? मुझे तो Limited light नहीं चाहिए। मुझे तो देखना हए पूर्ण तेजोमय धाम, और उसके लायक बनना है। फिर जो होगा वह देखा जायेगा। इस अनुभव में भी एक आनन्द है। अतः आप शान्ति से आशीष प्रदान करते रहना.....अभी मैं यहां दस-बारह दिन रहूंगा। यह चिट्ठी यदि आपको शीघ्र मिल जाय तो प्रत्युत्तर देना। मुझे बुरा नहीं लगेगा। मैं तो आप का जो दादु हूं वह ही हूं। ठीक, सब को जय स्वामिनारायण.....

लि,
भवदीय
दादु का जय श्री स्वामिनारायण

सन् 1952 में पू. काकाजी को स्वरुपानुभूति हुई और यह पत्र उन्होंने प. पू. पप्पाजी को सन् 1951 में लिखा था, जिसका कुछ अंश हमने अभी ऊपर देखा। वास्तव में यह प्रसादी-पत्र है। इस अंश के अध्ययन से हमारे चित्त में एक संदेह उठना स्वभाविक है कि पू. काकाजी को जो अनुभूति करवाई गई यह अनुभूति उनको प्रतीति करवाने के लिये थी या हमें पू. काकाजी कि दिव्यता की प्रतीति करवाने के लिये थी?

इस पत्र से तो यह सिद्ध होता है की इनको स्वरुप का ज्ञान स्वतः सिद्ध था ही। उनके मन की विचारधारा और उनकी चेतना के मूल में ब्रह्मस्वरुप स्वामिश्री शास्त्रीजी महाराज के प्रति उनकी जो अप्रतिम श्रद्धा और निष्ठा है और इनमें से उनका तत्त्वदर्शन और जैसा कि आगे देखा उनका स्वरूप (जो स्वतःसिद्ध है वह) समुद्भूत हुआ है, यह पत्रांश इस तथ्य का स्पष्ट निर्देशक है। इस पत्र में जो सत्य उभर कर सामने आया है वह है उनकी असाधारण निश्चिंतता और निर्भयता। इन दोनों ने उनको अपने आप पर अपने जीवन में प्रयोग करने का अद्भूत धैर्य और साहस प्रदान किया है। जहां ऐसी निर्भयता हो, ऐसी निश्चिंता हो, ऐसी निरपेक्षता हो वहाँ परमात्मा का और उनकी दिव्य शक्ति का अखंड निवास होता ही है।

इस पत्र में दो विशिष्ट गुण भी दृष्टिगोचर होते है।

(1) स्वतंत्र (देशकाल से अबाधित) जीवन जीने की तत्परता और

(2) स्वामी-सेवक भाव।

तर्क की दृष्टि से यह दोनों भाव विरोधाभासी है। ऐसा कैसे हो सकता है कि एक ओर से आप स्वतंत्र, मौलिक, मस्त अपने ही संकल्प के अनुसार जीवन जीने का दृढ निर्णय करो और दूसरी ओर से आप अपना पूरा स्वातंत्र्य-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब प्रभु के चरणों में समार्पित कर दो! रामायण के भ्रातृभाव का भी यहां एक भव्य दर्शन है। सहृदयभाव की चरम सीमा और पराभक्ति की यहां पराकाष्ठा है। भक्ति तत्त्व एक अद्भुत चीज है। यह बांधती नहीं है, स्वतंत्रता देती है। बांधना तो है मोह। भक्ति एक और सर्व समर्पण अर्थात् प्रेम की पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर मुक्त-मस्त जीवन जीने का बल है। अतः ऊपरी तौर पर जो विरोधाभास दिखाई देता है। वह वास्तव में नहीं है। यह एक ही तत्त्व के दो पहलू है।

हमें देखो, यदि थोड़ा सा भी मनमाना नहीं होता है, यदि हमारी इच्छानुसार फल नहीं मिलता है तो हम निराश हो जाते हैं, श्रद्धा हिल जाती है, धैर्य समाप्त होता है, शान्ति नष्ट होती है, मन विह्वल होता है, परमात्मा के प्रति दिव्य भावना से दिल हट जाता है। यह एक व्यक्ति ऐसा है जिसको उपर्युक्त बाधाएं छूती ही नहीं है। प्रत्यक्ष में असाधारण निष्ठा और तज्जन्य साहस, बल और स्वातंत्र्य इनमें निरंतर विद्यमान है। फिर से स्मरण दिलाया जाय कि पू. काकाजी में ये स्वरूपानुभूति के पूर्व के है। उनको नहीं, किन्तु उनकी श्रद्धा एवं समर्पण, उनकी दिव्य भावना, उनका यह निर्वासनिक मन, उनकी सरलता, उनकी यह सर्वोत्तम प्राप्ति को सर्वथा सर्वदा वंदन हो। पू. काकाजी की यह संप्राप्ति उनकी निजी नहीं, यह हम सब के लिये है। एक बार उन में श्रद्धा रखो, उनके सम्बन्ध में भीतर से आ जाईए, उनमें सद्भाव रखिए फिर देख लो आपका मन निर्वासनिक होता है या नहीं? उनकी सिद्धियाँ आपकी होती है या नहीं? सिद्ध होता है कि उनको स्वरूपानुभूति सहज थी ही। विशेषरूप से करवाई गई, इसका कारण है उनको जगत् कल्याण के प्रतीक बनाने के लिये !

हमारा यह परम सौभाग्य है कि प्रत्यक्ष प्रभु के प्रति अचल निष्ठा का यह नमूना प्रत्यक्ष है, हमारे सामने है, विद्यमान है। इस वर्ष की 4 जून के रोज इनकी षष्ठीपूर्ति होगी। इस प्रसंग को निमित्त बनाकर हम 'हीरक जयंती महोत्सव' मना रहे है। उनके लिये नहीं किन्तु हमारे लिये, क्योंकि इस प्रसंग से हमारे अन्तर में उनके प्रति सद्भाव दृढ हो, हमारे में सेवाभाव सुस्थापित हो और उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर के हम हमारे जीवन को अक्षरधाम रूप बनाकर धन्य बन सकें।

मानवजाति के विकासक्रम में जिन भावों ने, अवतार पुरुषों ने और संतपुरुषों ने नई सीढ़ी दिखाकर जोड़कर हमारे जीवन का पथ प्रदर्शित किया है और जिन्होंने उस पथ को सरल सुगम, समृद्ध और सामर्थ्यपूर्ण बनाया है उनके जीवन के बाल्यकाल से ही इनकी विभूतिमत्ता के इशारे मिलते रहते है।

केवल 9 साल की आयु थी तब पू. काकाजी ने पू. पप्पाजी को प्रश्न किया था 'स्वर्ग क्या है? वह स्वर्ग पृथ्वी पर आ सकता है?' एक छोटा सा शिशु स्वर्ग की बात पूछे इतना ही नहीं इसको पृथ्वी पर उतारने के पुरुषार्थ की बात करे, यह सामान्यतः असम्भव है। हलके विचार और निराशा जो जीवन के प्रफुल्लन और उन्नयन में घातक है ये तो इनके जीवन में कभी है नहीं। दिव्यता प्राप्ति का पुरुषार्थ ही उनके जीवन की वसंत है। तब से लेकर आज तक यह सुहावनी वसंत इनमें विद्यमान है। मस्ती तो थी ही। इसके पिछे बल था। इन्होंने अपने दादाजी को स्पष्ट कह दिया था कि 'हम भीख नहीं मांगेगे, स्वतंत्र जीवन जीयेंगे, परवश जीवन नहीं जियेंगे। इस में हमारी रुचि नहीं है।' जरा सोचिये, छोटे बच्चे के मुख से यह वार्ता! यह सामान्य घठना नहीं है। यह तो थी शिशुमुख से सहज निःसृत स्वामानपूर्ण, निडर और शौर्यपूर्ण जीवन की प्रातःध्वनि! स्वर्ग अर्थात् इस सांसारिक जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण जीवन की परिकल्पना! हॉ, यह कहीं है तो हमें प्राप्त करनी ही है-यह थी महत्त्वाकांक्षा, यह थी पुरुषार्थ की बुलंद घोषणा। यह थी एक उत्तम भावना। पू. काकाजी आज इसको सिद्ध कर चुके है। हमारे लिये स्वर्ग से अधिक पृथ्वी पर अक्षरधाम उतार लाये है। अतः वह हमारी प्रेरणा मूर्ति है। पुरुषोत्तमदास को इन्होंने स्पष्ट कहा था कि मुझे 'गवर्नर' बनना है। सर्वदा भावना ही उनकी उच्च! एक एक विचार सर्वोपरि! उस जमाने में- ब्रिटिश साम्राज्य के शासनकाल में 'गवर्नर' सर्वोच्चपद था। बस 'सर्वोच्च पद' की ही कामना! आज यह महापुरुष, व्यक्ति और समाज के आध्यात्मिक जीवन के सूत्रधार है। कितना उच्च पद ! मोम्बासा में स्कोलरशिप लेने के लिए पू. काकाजी ट्रस्ट के अध्यक्ष पू. बहेचरकाका को मिले, इन्होंने थोड़ा-सा हिचकिचाहट भाव दिखाया। पू. काकाजी ने कह दिया–'अब आप स्वयं देना चाहो तब भी मुझे स्कोलरशिप नहीं चाहिए। भविष्य में आपके पास से ही मैं बहुत कुछ लूंगा।'

पू. काकाजी ने यह आह्वान दिया था बचपन में और यह सिद्ध करके ही रहे। पू. बहेचरकाका ने प.पू. बापा, प.पू. काकाजी और प.पू. पप्पाजी के वचन पर गुणातीतसमाज की अत्यंत सेवा की।

मूल बात तो यह चल रही है कि पू. काकाजी बचपन से ही स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी थे और वास्तव में वह महत्वपूर्ण आकांक्षा आध्यात्मिक परिचर्या में परिणित हो कर प्रेरणादायी बन रही है। इस आकांक्षा का मूल शैशव से ही था !

ऐसे महापुरुषों के जीवन के मूल में पग-पग पर, पल पल संघर्ष चलता ही है और इन संघर्षों को इतनी ही आसानी से और सहजभाव से पार करने

का उनमें सामर्थ्य होता है। इन के जीवन चरित्रों के अध्ययन से हमें इसका पता चलता है। ऐसे तो वे लोग अपना सामर्थ्य दबा कर, गुप्त रहकर सामान्य व्यक्ति (Most ordinary person) के रूप में सबके साथ सहज सरलभाव से व्यवहार करते हैं। इसका कारण यह है कि तब ही उनका जीवनप्रवाह हर कक्षा के भांति-भांति प्रकृति वाले मनुष्यों पर अपना प्रभाव डालता है।

अतः सहजानंदस्वामी ने व. ग.प्र. 27 में लिखा है कि अतिसमर्थ होते हुए भी सामान्य रूप से व्यवहार करना यह सच्चे महापुरुष का लक्षण है। उनके जीवन में किसी भी प्रकार का भेदभाव और घृणा या विरोध स्वप्न में भी नहीं होता है। अतः उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में–कार्य में उदार रहने वाले को, दिव्यभाव रखने वाले को शीघ्र ही प्रकाश मिल जाता है। उनकी अन्तरात्मा जागृत हो जाती है। अदृष्ट पूर्व प्रेरणा मिलने लगती है। ऐसे पुरुष उस युग में उस समाज के अनुरूप ऐसा एक आचारधर्म छोड़ जाते हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के विविधलक्षी प्रवृत्तियाँ multi dimensional activities के समन्वय पर प्रकाश दिया गया है। श्रीजी महाराज ने भी ऐसे अमर गुणातीतभावना वाले ज्योतिर्मय पुरुषों की एक भव्य विरासत हमारे लिये अखण्ड छोड़ रखी है और इनके द्वारा जीवन और स्वभाव के जो परिवर्तन होते हैं उनके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। ऐसे पुरुषों की सम्यक् दिव्य दृष्टि, उनके व्यक्तित्व और उनकी प्रतिभा को इनकी प्रवृत्तियों से नहीं नापा जा सकता। एलेक्झंडर, चगीज़खान और हिटलर आदि ने क्या कम प्रवृत्तियां की थी? वे कम शक्ति पुंज थे? किन्तु इतिहास इनको महापुरुष नहीं कहते हैं। वास्तव में तो सच्चे महारथी राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर आदि माने गये हैं। सहजानंद स्वामी और इनके पांच सौ परमहंसों ने मात्र तीस साल की अवधि में अनेक मनुष्यों के जीवन परिवर्तित किये और इनके जीवन में प्रकाश डाला। काठी कोली, कडिया, कणवी आदि अनपढ़, निम्न और पिछड़ी मानी हुई जातियों के आचारधर्म बदल दिये। इतना ही नहीं, ऐसे परम पवित्र पुरुषों के संकल्प से जड़ प्रकृति वाली यह जातियां उस अद्भुत परिवर्तन के कारण ब्राह्मणोचित आचार का पालन करने लगे। यह तथ्य जगत के आध्यात्मिक इतिहास में अनुपम है। लंदन की रायल एशियाटिक सोसाइटी में इसकी गवाही है।

ऐसी ही अद्भुत परिष्करण की प्रक्रिया अभी भी विद्यमान है, और हमेशा विद्यमान रहने वाली है। यह प्रक्रिया, अभी, इस समय, हमारे जीवन काल में वर्तमान क्षण में भी चालू है। गुरुहरि योगीजी महाराज ने अंतर्ध्यान होने के पूर्व श्री सहजानंदस्वामी का संदेश चारों ओर फैलाने और मानव मन के परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर, अबाधित, अक्षुण्ण प्रवर्तित रहे इसके लिये ज्योतिर्धरों की महामूल्यवती विरासत छोड़ रखी है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है पू. काकाजी का इस भूमि पर अवतरित होना और इसके बाद इनका क्रिया कलाप। इनके शेशवकाल से-जैसा की आगे हमने देखा-अद्यापि पर्यन्त इनका भगीरथ पुरुषार्थ है एकान्तिक धर्म का परिपोषण करने का।

संसार चक्र का जब हम निरीक्षण करते हैं तब लगता है की हमारे आध्यात्मिक महारथीओं ने अपने युग की मांग के अनुसार जीवन के भिन्न भिन्न पहलुओं को उजागर करने के लिये क्रांतिकारी मार्ग अपनाया है। भावियुग की उषा क्षितिज पर उदयमान हो रही है। पू. काकाजी उसके वैतालिक है। घोर निद्रा में अंधेरे में पड़े हुए जड़, अस्वस्थ, अस्थिर को चेतना प्रदान करने के लिये नित्य जागृत, स्वस्थ, नित्य स्थितप्रज्ञ, चैतन्य के वह्निकण समान वह दिव्य विभूति है। गीता हमारा जीवनपथप्रदर्शक ग्रंथ है।

गीता में मूल्यवान संदेश है- सूत्र है। वह संदेश, वह सूत्र इस युग के अनुसार नये परिपार्श्व में हमारे जीवन में लाना है। यह कैसे हो सकता है? ऐसी कोई विभूति साकार रूप धारण करके अपनी दृष्टि से, अपनी प्रेरणा से, अपनी अविरोधवृत्ति से, असाधारण करुणा से, सरलता से, स्वाभाविकता से, निरपेक्षता से हमारे जीवन को भीतर से स्पर्श करे। हम सब के सौभाग्य से ऐसी ही मूर्ति 'पू. काकाजी' के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। जब और जहां चाहो वहां खड़ी है ! Time and Space की उनको बाधा नही है ! दिल खुल्ला कर दो, फिर देखो यह प्रतिभाशाली व्यक्तित्व। आपको एक Irresistible personality की अनुभूति होगी। आप आकर्षित होने लगेंगे, खिचे जाने लगेंगे। और दिव्य प्रेम के सूत्र से इनके परात्पर अंतर के साथ संलग्न हो जाते है। और उस दीपलोक में हम स्वयं अपनी त्रुटियाँ क्षतियाँ और अन्य दोष अनुभव करने लगते है। एकदम तुलना होने लगती है, अहो ! कैसा समृद्ध, चैतन्यमय इनका जीवन और सामने कैसा हमारा क्षुद्रवृत्ति पूर्ण, वासनापूर्ण और स्वभावपूर्ण कंगाल, जड जीवन ! इनके इस अपरिमय जीवन को इनकी बाह्य प्रवृत्तिओं से हम ने देखे इसका मूल्यांकन करने का कोई और नापदंड है !

हमें देखना यह है कि यह वह व्यक्ति है जिनको योगीजी महाराज जो कालातीत, सर्वमान्य पुराण पुरुषरूप की दिव्यविभूति थे इन्होंने समाधि करवाई थी। और वह भी इसलिए कि हमें प्रतीति हो सके ! यदि हम इस तथ्य को देखेंगे तो हमारे में एक प्रत्यक्ष निष्ठा, एक आत्मीयता, परमात्मा के साथ तादात्म्य की भावना जागृत होगी और उसके मूर्तिमान रूप पू. काकाजी है यह स्पष्ट हो जायगा। तो यह एक प्रकाश है, एक शक्ति है। उनका पूजन शक्ति पूजन है और यह 'हीरक महोत्सव' केवल यह शक्तिपूजन है, शक्ति प्राप्त करने के लिये !

यह युग बुद्धि पर चलता है। इसका स्पर्श सब व्यक्तियों पर पड़े वह स्वाभाविक है। अतः श्रद्धा अप्रतिम श्रद्धा के बिना हम शून्य शुष्क तर्कजाल में फंसे हुए रहते है। किसी धन्य प्रसंग का दर्शन क्षण में हमें श्रद्धा प्रसादयुक्त कर देना है। ऐसे प्रसंग का दर्शन करवाने के लिये प्रारम्भ में पू. काकाजी का पत्र-जो उन्होंने पू. पप्पाजी को सन् 1951 में लिखा था वह आप के सामने रखा है। महाराज कहते थे, पत्र पढ़ने से पत्रलेखक की क्षमता-प्रतिभा-शक्ति आदि का भान हो जाता है। महाराज स्वयं आज विद्यमान कैसे है? इन के ग्रंथों से और लेखों से-प्रसंगों से, दृष्टांतों से और उन्होंने जो प्रत्यक्ष ज्योतियां व्यक्तिस्वरूपों में प्रकाशित की इसके माध्यम से।

इन चैतन्यज्योतियों में पू. काकाजी के गुरु पू. शास्त्रीजी महाराज और पू. योगीजी महाराज के जीवन अद्वितीय, समर्थ, समृद्ध और चैतन्यमय दिखाई पड़ते है। क्यों वे ऐसी विभूतियां हुई? क्योंकि इन्होंने सहजानन्दस्वामी के प्रति गीता प्रोक्त-'सच्चे सद्गुरु के शरण में दीन वचन से समर्पित हो जाना' वचन को अङ्गीकार करके सब कुछ दीन भाव से समर्पित कर दिया था। पू. काकाजी ने भी यही किया और हम देखते हैं कि उनका जीवन कितना समृद्ध और चैतन्यमय है ! इसका कारण यह ही है की इनका गुरुहरि के साथ दृढ़ और दिव्य संबंध है। वास्तव में पू. काकाजी के भीतर वही चेतना है और वह ही क्रियान्वित हो रही है। यह है गुरुदेव द्वारा प्रज्ज्वलित दिव्य दीपक ! हम भी प्रतिज्ञा लें कि हमें भी जीवन में इसी प्रकार दिव्य प्रकाश लाना है।

ता. 4 जून 1978 का दिन और स्थल बम्बई हमें भूलना नहीं है। उस दिन वहां पहुंचना है, वहां हम सबको इकट्ठा होना है और मिल कर उत्सव के

माध्यम से अपना कृतज्ञता ज्ञापन करना है।

परम पूज्य योगीजी महाराज ने इनको सन् 1952 में समाधि के शुभाशिष दिये और हमको प. पू. काकाजी की ब्राह्मीस्थिति की एक प्रतीति करवाई। इस तथ्य की पुष्टि होती है हमारे वर्तमान दिव्य विभूतिस्वरुपों के शब्दों में। इनके शब्द विचारणीय है। माउन्ट आबु पर अंगत साधकों की शिविर हुई थी। इस में 'पू. काकाजी' का उल्लेख करते हुए प. पू. हरिप्रसादस्वामीजी ने कहा था, 'काका तो कहेंगे की मैं और हरिप्रसादस्वामी एक ही है। मगर मैं कभी भी यह नहीं कह सकूंगा, क्योंकि मैं तो उनको अपने से बहुत अधिक मानता हूँ, अपनी प्रेरणा मूर्ति मानता हूं। फिर मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं और पू. काकाजी एक है।' इसी प्रकार विद्यानगर के व्रतधारी युवकों के एक शिबिर में प.पू. पप्पाजी ने प.भ. रमणिकभाई के समक्ष प. पू. काकाजी के बारे में विशिष्ट उल्लेख करके कहा था कि 'लाखों रुपये की प्राप्ति हो या नुकसान, चारों ओर विषम परिस्थितियों का दावानल जलता हो या शीतल हिमालय के पहाड़ पर हो, काका के अंतर में गुरुकृपा से अनासक्त, तटस्थ, स्थितप्रज्ञ भाव निरंतर विद्यमान रहता है। माया के तूफान और आंधी में भी वे डिगते नहीं है.....'

हम सब ने भी दो स्पष्ट उदाहरण देखें है।

(1) गुरु का वचन था, बहनों को भी साधना करने का भक्ति के समान अधिकार का। इन्होंने यह करके दिखाया। यह एक साहस था जो एक शौर्य मांग लेता था। पू. काका ने सर्वस्व का-कीर्ति का भी बलिदान दे दिया। अपमान हुआ, गालियां भी मिली। किन्तु पू. काकाजी ऐसे ही शान्त स्वस्थ और प्रसन्न रहे।

(2) विमुख होने का समय आया। 'बहुत अच्छा, प्रभु की ऐसी इच्छा होगी, ऐसी ही निर्मिति होगी-यूं मान कर धैर्य से उस परिस्थिति का भी सहर्ष स्वीकार किया। प्रवृत्ति शून्य नहीं बने, अथक पुरुषार्थ में लग गये और आश्रितों के विकासक्रम को आगे बढा रहे है।

सन् 1965 की यह ऐतिहासिक घटना थी। आज उसके परिणाम आने लगे है। आत्मीय भावना पूर्ण एक सुघटित समाज बन रहा है। प. भ. नटुभाई और उनके परिवार जैसे अनेकों की परीक्षा हुई है किन्तु भगवत्स्वरूप संत के प्रति उनकी निष्ठा और सद्भावना विचलित नहीं हुई है।

हम यह दावा नहीं करते है की यह समाज पूर्णता पर पहुँच चुका है, किन्तु जैसा की प. पू. पप्पाजी बार बार कहते है-भगवत्स्वरूप सन्त अक्षरधाम का परम सत्य स्वरूप है-युगल उपासना का यह एक मूर्तिमान रूप है और पुराणी पीढी को भी 'ध्यानमूलं गुरोमूर्तिः, इस प्रकार प्रकट संत का ध्यान अर्थात् उन की महिमा का विचार, 'स्वामिनारायण' महामन्त्र और गुणातीत भावना प्रकट करने की दृष्टि पू. काका ने जडत्व नष्ट करके ज्वलंत ज्योति का प्रसाद देकर दी है। तो अब हमारे चित्त में किसी भी प्रकार की शंका न रखें, संशय न रखें, व्यावहारिक मूल्यांकनों को छोड़ दें, बौद्धिक गिनती को छोड़ दें और युग के आदेश को समझ कर पू. काकाजी के क्रान्तिकारी डग को समझे, अंतर में उतारें और 'अनुवृत्त्या भक्तया' अनुसार अभिप्राय समझ कर इनके हो जाए।

पू. काकाजी को प्रसन्न करने का एक सीधा रास्ता है। उनको मैत्रीभाव अत्यंत प्रिय है। हम कहीं भी हो, इस भाव को जीवन में उतारे। पू. काकाजी प्रसन्न होंगे। हम अमरत्व पाएंगे। हमारा जीवन अक्षरधाम बन जायेगा और देह रहते हुए भी अंतःकरण में अखंड शान्ति, सुख और आनंद प्राप्त हो जायेगा। यदि हमें यह उपलब्धियां हो और

इसको व्यापक बनाएंगे तब इस ''हीरक महोत्सव'' के आयोजन का सच्चा सुफल प्राप्त होगा। वह ही इसका उद्देश्य है--वह ही उसका फल है।

दूर के केन्द्र में जो रहते है और इस प्रसंग में उपस्थित रहना जिनके लिये असंभव है वे जहां हो वहां अपना कार्यक्रम पूर्व निर्धारित कर दे और महाराज, स्वामी और गुणातीतस्वरूपों की मूर्ति सामने रख कर धूप और दीया जला कर एकाद या दो भजन गा कर पत्रिका का पठन करें और अपने जीवन में भी इसी प्रकार का अपूर्व अनुभव हो इस के लिये प्रार्थना करें। प. पू. काकाजी की इच्छा यह है की उस दिन 60 मालाओं का जप यज्ञ करना। ऐसी सभा में भावना से की गई प्रार्थना संतों की कृपा से परमात्मा निश्चित् सुनेंगे और आधुनिक प्रवृत्तिमय जीवन की ओर से ध्यान हट जाएगा और आध्यात्मिक जीवन के लिये अभिरुचि जागृत होगी। ऐसे तो, अज्ञान और अविद्या से निवृत्ति कोटि साधनों से भी नहीं होती है; केवल सच्चे सद्गुरु की कृपा से और उनकी प्रसन्नता से और उनकी दृष्टि से हमारे जीवात्मा को तत्काल बल मिलता है और वे आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसरित होते है। हम सबके जीवन में ऐसा प्रकाश आ जाय, ऐसी समझ आ जाय, ऐसा दिव्य ज्ञान आ जाय हम सब अक्षरधाम के सुख के अधिकारी बनें, हमारी वासनाएं, इच्छाएं, ग्रंथियां और प्रकृति के भाव सब माया रूप बनकर परेशान न करें और यदि पूर्ण रूप से निर्मूल न हो, तब भी इनको जीत सकें जिससे प्रभु भक्ति में, सन्तों की सेवा में और सुहृद्भाव रखने में विघ्न रूप न हो और हम हर दृष्टि से सुखी होकर आनन्द सागर में मग्न रहें यह ही इस महामांगल्य पूर्ण प्रसंग पर हमारी अभीप्सा है-प्रार्थना है।

The Real Master

Which could be the most auspicious day of our life another than the day of celebration of diamond jubilee of Pragat Brahmaswaroop Param Pujya Kakaji, on 4th June at Sammukhanand Hall in Bombay? This is the day of rejoicing and paying our respect and compliments as a sign of innumerable gifts and blessings bestowed on us by His immence and over whelming love for us. Actually, we are reborn by coming in contact with such a Divine Personality. He brought the total change of our consciousness! With utmost humbleness and deep gratitude therefore, forever I pay my respects and love at the lotus feet of the Real Master-Pujya Kakaji.

It is generally not possible to write something about such Divine Personalities or Spiritual Masters when the ignorant mind and the intelligence cannot reach them. But it can be the gazing like a sun-flower towards the sun, and with whatever small inspirations communicatd in the from of an inner personal experience, of course with the limited vision, awareness, sense and perception governed by my desire-soul, waiting for an inner opening.

I was a science student, took the science degree and got a job in Nair Hospital. From the very begining my mother had given me freedom. In my college carrier and upto my joining the

Nair Hosptial no compulsion or restriction was put on me from the family or the society and was allowed to work freely. This actually brought number of ups and downs in my life. As a life of a woman in India is always restricted and under family control, I had also felt some inner confusions, conflicts and troubles and in an illusion. I was leading a life in the home, in the society and also amongst my friends without any aim or goal, just enjoying sensuous pleasures with the objective world in a free and exciting atmosphere.

As a science graduate my mind alwasys expected explanations and solutions at every stage for accepting the concept of existence of God. Outwarldly I used to attend with my friends some of the religious functions held at different places and particulary of Swaminarayan Satsanga. In 1977 suddenly in a performance of one drama I came across some of the disciples of this Satsange. One of my lady friends from Brahmkumari section impressed me in the begining and drew me towards this Satsanga. Some or how the description she gave me of the Divine Personality was so alluring, so adorable, so magnanimous that just by hearing only some of the incidences, the qualities, spiritual discourses and the movements of that Divine Personality, I was inwardly attracted and I intensely felt that I should have His Darshan....I then used to attend some of the Satsang discourses at Tardeo. Everytime Pujya Kakaji with overflowing love and compassion used to narrate in His talks the qualities and powers of Divine Entities and necessity of pragt devotion and adoration for Gurudev's infinite grace, love and compassion. Any way some respect and adoration arose in my mind and heart towards Pujya Kakaji because there was no force or compulsion to strictly follow their rules and regulations. I was always advised by Him to find out and understand the real meaning or art and science of life and seek the Eternal Truth with an open mind & pure heart. This appealed me most and I was gradually drawn towards this Divine Personality. His affections & love were so immense for me that the attraction also became irresistible. But, I had the doubting mind and that duality-that conflict started in my mind. It was a fight between the sentiment of emotion or passion on heart feeling and the intellectual mind-the logic the reason. How could we believe in a human frame the Eternal Divinity manifesting for all those divine actions for the transformation of the crude nature. Number of questions were arising in the mind and the reply was that as we believe in science and doubt goes off when a litmus paper is used to infer whether one element is chemically alkali or acid, so true is this Knowledge..... And the same thing I experienced later in my life. Pujya Kakaji continued to explain with all the logic, reason, intelligence and with the five pramans for accepting the presence of the existence of Supramental Divinity

here. That was shree Gurudeo Yogiji Maharaj! And one's relationship with Him has to be felt as divine! He used to say, as per Gita (18-66) this was the foundation of the Spiritual evelution the first step and the begining considered to be the end in the spiritual advancement. However, at that time accepting those facts, but as soon as I used to come down from the Staircase of the 4the floor of Tardeo, the doubting mind was always reacting in different ways because there was no other company and at the same time mind & heart were always engrossed in the external enjoyments and temptations. The life was lived only on the 'pleasure principle'. This higher knowledge could not be imbibed even though so much impressed-so much heard-so much feeling also created! But it was so divine knowledge which required inner purification of my instrument.

However, I insisted that I must have an inner specific experience so that my mind can fully and totally believe in the existence of the divine power here in the personal form, And he agreed that if you have real aspiration real inner urge for the Divinity, you will have that sort of revelation as has been alredy granted as a boon by Sahajanand swami. No doubt, because of my own doubting mind and distrust the time period was lengthened; but by His Sankalpa or Will some incidents happened in my life which radically changed my attitude towards the Divine Master Pujya Kakaji and this holy Satsanga.

First incidence : It was a fact that I loved pictures-movies, external free movements, picnics and I had my college and hospital friends with whom I was moving for all those outwards sensuous temporary enjoyments. These attachments were so strong that even at the time of Satsanga meeting, I was always drawn and attracted more on this side rather than on the obidience or observence or the commands from the Master. But, my desires and ambitions were roused up and there were some askings from the divine power for their fulfilments. This process was fully satisfying me and also slightly convinced me of my being in a good company for enjoying heaven in this life. Number of things used to happen most surprisignly without any effort on my part. It was, of course, a happy relationship, but not love-intimacy with the Divine Master and this holy Satsanga. Vasanas and the remblings of the crude nature were no doubt disturbing the regular life, but with litle prayer and meditation they were disappearing. There was now a slight change in my attachments towards the external objective fulfilments and I was inwardly introspecting about the magnanimity and gift-love freely bestowed by the Master in changing my life from the lower consciousness to the higher knowledge.

Second incidence : Even after doing regular Satsanga, there were certain actions and movements of fellow satsangees which used to puzzle me and

it created some distrust in the working of the Master. I therefore insisted for a unique spiritual experience, so that I could then totally surrender to God and the Master without any reservation. My urge-my inkling was a mixed one. It was purely from the conscious mind and emotion, not from the inner consciousness. As if my prayer has been heard, some unfortunate incidences occured..... My left leg got so damaged that it could not be repaired and I should suffer throughout my life with continuous treatment of injecting blood at an interval of fifteen days to enable me to move and walk to attend my work. This actually crushed all my ambitions and feelings. It was a period of deep morass and no solution could be found out. With all the doctors available at my disposal at Nair Hospital and even at other centres, no body could cure me. I went to Ganeshpuri and other polio centres, but I got fully exhausted and left the hope for improvement. The pain was continuous. When I became helpless, in a natural way I sincerely prayed God and the Master!

Actually this was my sincere prayer from the bottom of my heart in a helpless condition of mind. My prayer was immediately heard and the call came over with the full promise by Pujya Kakaji that He will do Mahapooja for me and the whole misery would be over, the trouble will go off within fifteen days and after it a new awakening will start and if this happens then the firm conviction should be formed to surrender to God and do this satsanga for the whole of life. I immediately resolved with firm conviction about the effectiveness of this 'Swaminarayan' Mahamantra and full trust in Mahapooja conducted by Pujya Kakaji, Positively by His Sankalpa and prayer, on the fifteenth day some how this terrific trouble of my leg vanished.I am now enjoying a robust health and feel that nothing had happend to my left leg. It is in complete order and I can now even run and do all the activities in a free and natural manner. I had decided firmly that if God is really here, then this must happen. And my expectation of the unique experience was really fulfilled. It was all due to this Divine Personality's Pujya Kakaji's blessings and gift love that those words came true so honest so sincere-so blissfull. I was then initiated by Jyotiben as per the custom under the inspiration of My Master and was advised by Him to do regualr meditation and prayer at least for 2 hrs. a day. I have applied in my life this chanting of 'Swaminarayan' mahamantras as a mean of overcoming the confusions and conflicting chaos with the rememberance of Pujya Kakaji's movements & preachings. Within 15mts. all the clouds and disturbances go away. This is a 'Swaroop yoga' which I am practising regulary every morning and evening. All my prayers are heard and the basic needs of life are also fully satisfied. I am now extremely happy and contented in my work, in my family and in the society.

There was not only the end of misries

and the pain-sarrow-chaos, but as He had promised, the love intimacy with God also started as a result of which the external attachements and clinging of disire-soul vanished. My intimate friends professors and doctors who knew my nature were really suprised to see his dynamic change in my life. One of my professors also went to the Master and said: 'How has she suddenly changed? How has she left over all those feelings and temptations of the worldly life? He found this something divine and gave compliments to the Master as so sudden a chage could happen here!

Master gave all the compliments to His Divine Gurudeo Yogiji Maharaj! This confirmation, this affirmation, this consumation of love intimacy with the divinity is so real, so authentic, so creative that I request the fellow Sadhikas to do this and this work alone from today only when tomorrow may not come.

There was a third incidence also in my life which is a secret one, but it has given me enough strength and power against the temptations, attractions and disturbances from the hostile forces. Of course, this was the third test of my love and trust towards the God and my Master. The disturbances in life, friends family and society had all subsided; the fear, the jeolousy and atrraction of the sex and security had all subsided; the fear, the jeolousy and attraction of the sex and security had all disappeared! Yet, no doubt-accepting my beloved husband as my life-co-partner, my mind was revolting against the orthodox nation 'Patih Parmeshwarah' and against other such cults which used to create day to day conflicts and disturbances. But Pujya Kakaji's loving expressions and teachings changed my attitude and vision. Now, without any sort of distrubance I can percieve God in my husband, in my child in my mother in-law and doctors with whom I work. I can accept all their actions in a most loving manner and maintain equibalance in all disturbing situations and circumstances. I firmly believe that it has just happend because of Master's special blessings. I even do not know how I am fit for this! I can't say that all my egoistic tendencies have totally disappeared, but I am fully assured and convinced that my Master shall take full care of me, protct me and guide me against all odds and disturbances of hostile forces and by His grace I will always maintain the poise of equality. I have no other aim or goal in my life, but just remaining the most simple and humble among the Sadhikas of my Divine Master, I wish to render all those services to God and fellow satangis as an offering only, without expecting any fruits, with utmost vigour and enthusism through out my life wherever and in whatever condition my Master wants for completing my cycle or the shortcomings which are carried out from previous births.

This day when Pujya Kakaji's-Master's diamond jubilee is being celebrated my heart is pregnant with over flowering

joy....In what manner could I resiprocate the debt when He has reconciled faith and reason and from a stark atheist has changed me to a fully dedicatd Sadhika! I only pray that even with the free mind and the inner powers of consciousness and some attainment of siddhi, I may not get bound up and may have such blessings to remain ever His humble and dedicated servent. Where there is such a divine vision, people will aways grow, will have the inner opening or Kundalini awakening and in the end attain Eternal bliss and liberation in this life.

Then, let us pray Him Sincerely so that he may remain with us for the long long period for our Akshardham and for spreading Swaminarayan's message.

-Mrs Pratimadevi S. Parikh

★ ★

ROYAL PASSAGE TO DIVINITY

Our life is the greatest boon through which one can transcend all planes of existence-namely as scriptures declare the seven planes. It is upto us in which station we want to reside permanently. Each state has its power, light, joy and inherent law of nature with its revelation and realisation, sense, vision, and power. There are heavens and hells, Siddhalokas and eternal life of plane of Supramental consciousness. It is the Eternal Abode of Almighty where free souls permanently reside; may we call it Golok or Siddhashila or Vaikuntha or Akshardham as Nirwan-Shunytha or Akshardahm as Nirwan-Shunyata or Brahmisthiti.

As this is an atomic, chemical and scientific age, it is full of tensions, conflicts and chaos at every stage. One has firstly to decide how to be happy, contented and peaceful with the full awareness and freedom in all aspects of our life in this world. Secondly, one has to strive for knowing one's own real self and how that opening can be felt and experienced for spiritual life.Ignorance, impurities and avidya are the fundamental hindrances in spiritual evolution of the soul and Lord Swaminarayan has paved this way for all by maintaining the spiritual heirarchy in Divine Forms in this world. One should come in their contact for overcoming these three herdles in a simple way. It is the adoration and devotion towards such Masters, which opens our inner Being. The means and methods are numerous, but the royal path is the sant Marg with the synthesis of yoga-Swaroop Ashtanaga for enjoying Eternal bliss, shanti, power and action as an offering to God without expectation of any fruits and sharing with fellowmen.

May God inspire us all to take up this unique opportunity of Divine life by His grace, love and compassion. If it is freely bestowed why not accept it lovingly?

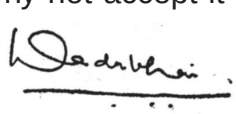

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	11.5.78	गुरुवार	ब्र.स्व. स्वामिश्री शास्त्रीजी महाराज का स्वधामगमन
2.	दि.	16.5.78	मंगलवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
3.	दि.	18.5.78	गुरुवार	मोहिनी एकादशी, उपवास
4.	दि.	21.5.7	रविवार	श्री नृसिंह जयंती
5.	दि.	1.6.78	गुरुवार	अपरा एकादशी, उपवास; प.पू. पप्पाजी का दृष्टादिन
6.	दि.	2.6.78	शुक्रवार	ब्र.स्व. स्वामिश्री योगीजी महाराज का प्राकट्यदिन
7.	दि.	4.6.78	रविवार	प.पू. काकाजी का हीरक (षष्ठीपूर्ति) महोत्सव, स्थान, बम्बई-सम्मुखानंद होल
8.	दि.	15.6.78	गुरुवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
9.	दि.	16.6.78	शुक्रवार	श्री स्वामिनारायण भगवान का स्वधामगमन
१.	दि.	17.6.78	शनिवार	एकादशी, उपवास
11.	दि.	1.7.78	शनिवार	योगिनी एकादशी, उपवास
12.	दि.	14.7.78	शुक्रवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती,

Publshed by: Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society,
A-103,, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052. India. Tel.: 518838
Printed at Thakkar printing press, 2588, Basti Punjabian, Subzi mandi, Delhi-110 007 Phone : 524058